वैदिक भाषा में प्राकृत के तत्त्व

डॉ० प्रेमसुमन जैन, डॉ० उदयचन्द्र जैन

भारतीय आर्यशाखा परिवार की भाषाओं को विद्वानों ने जिन तीन वर्गों में विभाजित किया है वे इस प्रकार हैं—

१. प्राचोन भारतीय आर्यभाषा।

२. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा।

३. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा।

भाषाशास्त्र के इतिहास में विद्वानों ने जो अध्ययन प्रस्तुत किये हैं उनसे यह सामान्य निष्पत्ति हुई है कि इन सभी आर्यभाषाओं का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध है। वैदिक भाषा, संस्कृत, प्राकृत एवं आधुनिक आर्यभाषाओं पर स्वतन्त्र रूप से कई अध्ययन प्रस्तुत हो चुके हैं। कुछ इन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से भी सम्बन्धित हैं। किन्तु वैदिक भाषा और प्राकृत भाषा के तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में कोई स्वतन्त्र रूप से और गहराई से कार्य हुआ हो, ऐसा हमारे देखने में नहीं आया है। प्राकृत भाषा पर कार्य करने वाले विद्वानों ने अवश्य ही प्रसंगवश प्राकृत और वैदिक भाषा की समान प्रवृत्तियों की संक्षेप में चर्चा की है, किन्तु वैदिक भाषा और व्याकरण पर देशी-विदेशी विद्वानों के जो ग्रन्थ हम देख सके हैं, उनमें वैदिक भाषा में प्राकृत के तत्त्वों का संकेत भी नहीं मिलता।[1] प्राचीन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में यह स्थिति निराशाजनक ही कही जायेगी।

अध्ययन सामग्री

प्राकृत भाषाओं का अध्ययन प्रस्तुत करते समय डॉ० पिशेल, पं० बेचरदास दोशी, डॉ० प्रबोध पंडित, डॉ० कत्रे, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री आदि विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में वैदिक भाषा में प्राकृत तत्त्वों के विवेचन के कुछ संकेत दिये हैं।[2] ये संकेत इस दिशा में इस कार्य को करने के लिए प्रेरणादायी हैं। कुछ भाषाविदों में डॉ० सुनीतकुमार चटर्जी, डॉ० सुकुमार सेन, प्रो० तगारे, डॉ० भयाणी, डॉ० गुणे आदि ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि वैदिक भाषा के साथ-साथ जो जनबोली चल रही थी वह प्राकृत का प्रारम्भिक रूप है और उससे कुछ समान तत्त्व वैदिक भाषा और प्राकृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में समान रूप से ग्रहण किये गये हैं।[3] ज्यून्स ग्लास ने भी अपने फलांग व्याख्यानों में वैदिक भाषा और प्राकृत के सम्बन्ध को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।[4] इधर गत दो दशकों में जो प्राकृत भाषा पर विभिन्न सेमिनार हुए हैं, उनमें भी आधुनिक विद्वानों में से कुछ ने इस दिशा में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।[5] इस अवधि में वैदिक भाषा और प्राकृत साहित्य पर जो कार्य सामने आये हैं उनके तुलनात्मक अध्ययन से भी वैदिक भाषा में प्राकृत के तत्त्व खोज निकालने में सुविधा प्राप्त हुई है। इस तरह उपर्युक्त सामग्री के आधार पर वैदिक भाषा और प्राकृत के सम्बन्ध को सोदाहरण स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जा सकता है। यद्यपि संकलित सामग्री और अध्ययन की नई दिशाओं के आधार पर यह विषय एक स्वतन्त्र ग्रंथ का विषय है। किन्तु यहाँ रूपरेखा के रूप में कुछ समानताओं पर ही विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

वैदिक भाषा

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के प्रतिनिधि ग्रन्थ मूलतः चार वेद हैं। यद्यपि इन चारों वेदों की भाषा में विद्वानों ने कुछ स्तर निश्चित किये हैं, किन्तु उसकी संरचना में प्रायः एकरूपता पायी जाती है। वैदिक विद्वान् और आधुनिक भाषाविद् यह स्वीकार करते हैं कि वेदों की भाषा उस समय में प्रचलित कई लोक भाषाओं का मिला जुला रूप है, जिसे छांदस भाषा के नाम से जाना गया है। छांदस भाषा तत्कालीन जनभाषा का परिष्कृत रूप है। यही तत्त्व वर्तमान में उपलब्ध प्राकृत साहित्य की भाषा में थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ पाये जाते हैं। अतः भाषाविदों का यह निष्कर्ष है कि वैदिक भाषा और प्राकृत-भाषाएँ किसी एक मूल स्रोत से सम्बन्ध रखती हैं। जो उस समय की जनभाषा रही होगी।

प्राचीन भाषा के विकास के मूल में विद्वानों ने तीन देशी विभाषाओं का प्रभाव स्वीकार किया है।

(i) उदीच्य (उत्तरीय विभाषा)।
(ii) मध्यदेशीय विभाषा।
(iii) प्राच्य या पूर्वी विभाषा।

इनमें से उदीच्य विभाषा से छांदस भाषा विकसित हुई, जिसमें वैदिक साहित्य लिखा गया है। और प्राच्य या पूर्वी विभाषा से प्राकृतों का विकास हुआ है। सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से देखें तो यह क्रम ठीक प्रतीत होता है कि वेदों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संरचना पंजाब, अथवा उदीच्य प्रदेश में हुई मानी जाती है। अतः वैदिक भाषा में उदीच्य विभाषा का अधिक प्रभाव रहा और प्राकृत भाषाओं का साहित्य अथवा प्रयोग पूर्वी प्रदेशों में अधिक रहा इस कारण उसमें प्राच्या विभाषा के तत्त्व विकसित हुए हैं। किन्तु दोनों विभाषाएँ समकालीन होने से एक दूसरे को प्रभावित करती रही हैं, इसी कारण से वैदिक भाषा और प्राकृत में कई समानताएँ प्राप्त होती हैं। वैदिक भाषा में मूर्धन्य ध्वनियों का प्रयोग, न के स्थान पर ण का प्रयोग, विभक्ति रूपों आदि में वैकल्पिक रूपों का प्रयोग, क्रियाओं में सीमित लकारों का प्रयोग आदि विशेषताएँ उसमें प्राकृत तत्त्वोंके मिश्रण को प्रकट करती हैं। इन्हीं प्रवृतियों के कारण वैदिक भाषा के साथ-साथ जनभाषा प्राकृत का अस्तित्व स्वयमेव सिद्ध होता है। बाकरनागल कहते हैं कि प्राकृतों का अस्तित्व निश्चित रूप से वैदिक बोलियों के साथ-साथ वर्तमान था, इन्हीं प्राकृतों से परवर्ती साहित्यिक प्राकृतों का विकास हुआ है।[६] डा० विंटरनित्ज भी यही कहते हैं कि संस्कृत के विकास के साथ ही साथ और समानान्तर बोलचाल की आर्यभाषाओं का अधिक स्वाभाविक विकास भी चल रहा था, जिन्हें हम मध्ययुगी भारतीय भाषाएँ (पाली, प्राकृत, अपभ्रंश) कहते हैं। वे सीधे संस्कृत की उपज नहीं हैं, अपितु प्राचीन लोक भाषाओं (वैदिक भाषा) से अनुबद्ध हैं।[७]

वैदिक भाषा के उपरान्त जब पाणिनी ने अपने समय की प्रायः समस्त भाषाओं को एकरूपता में बाँधने के लिए भाषा का संस्कार कर संस्कृत भाषा का व्याकरण बनाया तो उन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती वैदिक भाषा और प्राकृत की समान प्रवृत्तियों का संकेत अपने ग्रन्थ में किया है। वैदिक-प्रक्रिया में प्रायः इसी प्रकार के शब्दों का कथन है। बहुलं छंदसि आदि कहकर पाणिनी वैदिक भाषा के वैकल्पिक प्रयोगों का संकेत करते हैं।[८] जो प्राकृत की एक सामान्य विशेषता है। प्राचीन भारतीय भाषाओं की इन प्रवृत्तियों को संस्कृत में निबद्ध कर देने के उपरान्त भी तत्कालीन साहित्य में जनभाषा के तत्त्व प्रयुक्त होते रहे हैं। यद्यपि उनकी मात्रा वैदिक भाषा की अपेक्षा कुछ कम है। ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण एवं महाभारत के प्रणयन में भी विशुद्ध रूप से संस्कारित भाषा के नियमों का पालन नहीं हुआ है। चूँकि इनका सम्बन्ध लोक जीवन से था। अतः यत्र-तत्र लोकभाषा के तत्त्व भी इन काव्यों में प्रयुक्त हुए हैं।[९] महाकाव्य युग के बाद तो पाली-प्राकृत के प्रयोग लोक और साहित्य दोनों में होने लगते हैं। जिसका उदाहरण त्रिपिटक, आगम एवं प्राकृत का शिलालेखी साहित्य है। अतः वैदिक युग से लेकर महावीर और बुद्ध के युग तक प्राकृत भाषा का विकास और प्राकृत का समकालीन साहित्य तथा संस्कृति से सम्बन्ध आदि विषयों पर गहराई से अध्ययन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया जाना अपेक्षित है। यहाँ हम वैदिक भाषा में प्राकृत के तत्त्वों के अन्वेषण तक ही अपने को सीमित रखते हैं।

प्राकृत भाषा

भाषाविदों ने प्रकृति अर्थात् स्वभाव से उत्पन्न लोकभाषा को प्राकृत भाषा का नाम दिया है। अतः प्राकृत भाषा का अर्थ हुआ लोगों का स्वाभाविक वचन-व्यापार। इसी स्वाभाविकता के कारण प्राकृत कुछ विशिष्ट वर्ग की भाषा न होकर जन-सामान्य की भाषा बनी रही है। साहित्य की दृष्टि से महावीर के बारह आगम ग्रन्थ आदि जिस भाषा में प्राक् कृत अर्थात् सर्वप्रथम लिखे गये हों, उस भाषा को भी प्राकृत नाम दिया गया है। यह प्राकृत भाषा केवल दर्शन ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं है, अपितु लगभग दो हजार वर्षों की अवधि में इसमें भारतीय साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में ग्रन्थ लिखे गये हैं। इस विशाल साहित्य को ध्यान में रखकर प्राकृत वैयाकरणों एवं आधुनिक विद्वानों ने प्राकृत भाषा की कई विशेषताएँ रेखांकित की हैं।[१०]

भारोपीय परिवार को भाषाओं के अध्ययन करने की जो विशेष पद्धति भाषा-विदों ने प्रचलित की है, उसे भाषा-विज्ञान के नाम से जाना जाता है। भारोपीय परिवार की भाषाओं का सम्बन्ध, स्वरूप एवं विकास की दृष्टि से इस क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचलित सशक्त भाषा संस्कृत के साथ रहा है। अतः संस्कृत के अतिरिक्त अन्य-भाषाओं का अध्ययन वैयाकरणों और आधुनिक भाषाविदों ने संस्कृत भाषा की प्रवृत्तियों को मूल में रखकर किया है। यहाँ तक की अवेस्ता, जर्मन, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं की प्रवृत्तियों का ज्ञान कराने के लिए भी संस्कृत को मूल में रखा गया है।[११] अध्ययन की दृष्टि से इनके मूल में संस्कृत होते हुए भी जिस प्रकार ये सभी भाषाएँ आज स्वतंत्र भाषाएँ मानी जाती हैं, उसी प्रकार प्राकृत भी एक स्वतंत्र विकसित भाषा है, भले ही उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन आज तक संस्कृत को माध्यम बनाकर किया गया हो।

यही स्थिति वैदिक भाषा के अध्ययन की रही है। उसकी सभी प्रवृत्तियों को संस्कृत में खोजने का प्रयत्न किया गया है, जबकि उसकी अनेक प्रवृत्तियाँ प्राकृत भाषा से मिलती-जुलती हैं। वैदिक भाषा के पूर्व प्रचलित जनभाषा प्राकृत के स्वरूप को प्रकट करने वाले साहित्य का अभाव होने से यह कह पाना आज कठिन है कि वैदिक भाषा में जो प्राकृत के तत्त्व प्राप्त होते हैं वे मौलिक हैं अथवा वैदिक भाषा से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनका प्राकृतीकरण हुआ है। वैदिक साहित्य में प्राकृत प्रथमा विभक्ति एक वचन में प्रयुक्त देवो, देव, देव इन शब्दों में से कौन मूल है तथा कौन तद्भव। इसका निर्णय करना विद्वानों के समक्ष विचारणीय प्रश्न है। यद्यपि भाषाविदों ने मुख सौकर्य आदि कारणों द्वारा भाषा के विकास को कठिनता से सरलता की ओर गति करने की बात कही है। किन्तु यह अंतिम निष्कर्ष नहीं है। मुख शब्द से मुँह बना अथवा मुँह से मुख इस प्रकार के परिवर्तनों को नये ढंग से सोचा जाना आवश्यक हो गया है। तभी वैदिक भाषा, संस्कृत और प्राकृत आदि भाषाओं के विकास को ऐतिहासिक क्रम से समझा जा सकेगा।

अतः प्रस्तुत निबंध में फिलहाल प्रचलित प्रवृत्ति का आश्रय लेते हुए संस्कृत को मूल में रखकर वैदिक भाषा में प्राकृत तत्त्व स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। भाषाविदों द्वारा स्वीकृत शब्दावली के अनुसार वैदिक भाषा की निम्न प्रवृत्तियों में प्राकृत के तत्त्व देखे जा सकते हैं। जैसे–(१) स्वर परिवर्तन (२) व्यञ्जनों का सरलीकरण (३) शब्दरूपों में वैकल्पिक प्रयोग (४) विभक्तिलाघव एवं वचनलाघव (५) देशी शब्दों के प्रयोग की अधिकता (६) मूर्धन्य ध्वनियों का प्रयोग (७) क्रियारूपों में लाघव (८) कृदंत प्रत्ययों का सरलीकरण (९) संधि प्रयोगों में प्रकृतिभाव आदि।

ध्वनि परिवर्तन

वैदिक भाषा और प्राकृत भाषा में ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत स्वर और व्यंजनों के परिवर्तन में कई साम्य देखे जा सकते हैं। वैदिक भाषा में ऐसे कई उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिन्हें सुविधा की दृष्टि से स्वर-परिवर्तन और व्यंजन-परिवर्तन के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है।

स्वर परिवर्तन

स्वर परिवर्तन के अन्तर्गत ह्रस्व स्वर का दीर्घ हो जाना, दीर्घ स्वर का ह्रस्व होना, एक स्वर के स्थान पर दूसरे स्वर का प्रयोग होना, व्यंजन के साथ स्वर का आगम हो जाना तथा स्वरों का लोप हो जाना आदि प्रवृत्तियाँ वैदिक भाषा और प्राकृत में प्रायः समान देखी जाती हैं। भाषा विज्ञान में ह्रस्व मात्रा का नियम बहुत प्रचलित है। प्राकृत में यह प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है कि कभी स्वर ह्रस्व से दीर्घ एवं दीर्घ से ह्रस्व हो जाते हैं। वैदिक भाषा में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा :—

(१) **ह्रस्व का दीर्घ**

वैदिक	**संस्कृत**	**प्राकृत**
पिना[13] (ऋ, १,१५,५)	अश्व	आसो
अथा (ऋ, १,७६,३)	वर्षः	वासो
मेना[14] (अथर्व-१,९,३)	प्रकटं	पायडं
हरी (अथर्व १,६,२)	हरि	हरी
दूलह (अथ ४,९,८)	दुर्लभ	दूलह
पूरुष[15] (यजु-१२-७८-१)	पुरुष, पुष्य	पूसो
वायू (ऋ १-२-४)	वायु	वायू
दूनाश (ऋ ४-९-८)	दुर्नाश, दुकूल	दुअल्लं

(२) **दीर्घ का ह्रस्व**

अमत्र (ऋ २-३६-४)	अमात्र	अमत्त
महि (ऋ १-११९-४)	मही	महि
रोदसिप्रा (ऋ १०-८८-१०)	रौदसीप्रा-गभीरम्	गहिरं

प्राकृत में एक विशेष प्रवृत्ति है कि शब्दों के स्वर दूसरे स्वरों में बदल जाते हैं। जैसे–अ का इ, उ आदि। यही प्रवृत्ति वैदिक भाषा में मिलती है।

(३) **स्वरागम**

महित्व (अथर्व ४-२-४)	महत्व, उत्तम	उत्तिमो
अङ्गिर (यजु १२-८-१)	अंकार, मध्यमः	मज्झिमो
तनुवम् (तै, सं ७-२२-१)	तन्वम्	तणुवं
सुवर्ग (तै० ४-२-३)	सवर्गः	सुवग्गो
त्रियम्बकम् (वै० प्र० ६-४-८६)	त्र्यम्बकम्, व्यजन	विअणं
सुधियो[16]	सुध्यो, कूर्पास	कुप्पिसो, कुप्पासो
रात्रिया[17]	रात्र्या, द्रव्य	दविय

(४) **स्वरलोप**

पूष्णे (यजु-३-८-१५)	पूषण, प्रस्तावः	पत्थवो
परुष्परु (अथर्व ४-९-४)	परुषापरु, दावाग्नि	दवग्गी
उत त्मना (यजु १३-५२-१)	उत आत्मना, अलावु	लावू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) **इ का ए**

एदं (सा० ६६६)	इदं	एअं
एंद्र (सा० ३९३)	इंद्र, शय्या	सेज्जा
एतो (सा० ३५०)	इतः	एओ

(६) **ऋ के परिवर्तन**

प्राकृत में प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के ऋ वर्ण का अभाव है और उसके स्थान पर अ, इ, उ, ए, रि आदि का प्रयोग होता है। यथा—

कराम (यजु १९-६२-१)	क	करइ
पितर (अथर्व ६-१२०-१)	पितृ	पिअर
मातर (अ० ६-१२०-१)	मातृ	माअर
पिता (अ० ६-१२०-२)	पितृ	पिआ-पिदा
रजिष्ठम् (वै० प्र० ६-४-१६२)	ऋजिष्ठम्, ऋद्धि	रिद्धि
बुंद (निरुक्त पृ० ५२२)	वृंद	बुंद
कुठ (ऋ १-४६-४)	कृत, पृथिवी	पुहई
गहें (वै० प्र०)	गृह	गेह
एध[19]	ऋध, वृन्तम्	वेट्टं

(७) **ऐ का ए**[20]

केवत	कैवत, शैला	सेला
वोढवे	वोढवै, ऐरावण	एरावण
मेध्ये	मेध्यै, कैलास	केलास
सेन्यं (अ० का० १८-१-४०)	सैन्यं	सेन्य

(८) **औ का ओ**[21]

ओषधी	औषधी	ओषहि
स्नोपशा	स्वौपशा, कौमुदी	कोमुई

(९) **अय का ए**

त्रेधा (यजु० ५-१५-१)	त्रयधा, सौन्दर्य	सुन्देरं
श्रेणी[22]	श्रयणी, नयति	नेति
अन्तरेति (शत १-२-३-१८)	अन्तरयति, कयली	केली
क्षेणाय[23]	क्षयणाय, कयल	केलं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) अव को ओ

श्रोणी (अथ० १-२-३)	श्रवण, नवमल्लिका	णोमालिया
लोण[२४]	लवण	लोण
ओर्नाति[२५]	अवनयति	ओणइ

(११) विसर्ग का ओ

प्राकृत में विसर्ग का प्रयोग नहीं होता है। प्रायः इसके स्थान पर ए अथवा ओ प्रयुक्त होता है। वैदिक भाषा में यद्यपि विसर्ग का प्रयोग होता है, किन्तु उनके विकल्प रूपों में ए और ओ वाले प्रयोग भी पाये जाते हैं। यथा—

देवा (ऋ १-१-५)	देवः	देवो
वायो (अथ-१-२२-१)	वायः	वायो
सो (ऋ १-१९१-११)	सः	सो

(१२) विसर्ग का लोप

देव (ऋ १-१३-११)	देवः	देव
वाय (ऋ १-२-२)	वायः	वाय
स (ऋ १-१-२ (अ २-१-३)	सः	स

(१३) ए का प्रयोग

ये (ऋ १-१९-३७)	यः	ये, से

(१४) व्यञ्जनपरिवर्तन

प्राकृत शब्दों में व्यञ्जन परिवर्तन की प्रवृत्ति कई प्रकार से देखी जाती है। कई जगह आदि व्यञ्जन का लोप, कई जगह मध्य-व्यञ्जन लोप और कई स्थानों पर अन्त्य व्यञ्जनों का। वैदिक भाषा में ये सभी प्रकार के व्यञ्जन परिवर्तन पाये जाते हैं। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

(१५) क को ग

गुल्फ (अथ० १-२०-२)	कुलफ, एक	एगो
गार्त[२५]	कार्त, काकः	कागो

(१६) ख को ह

मह (ऋ १-२२-११)	मखः, मुख	मुह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१७) ट को ड

हव्यराड् (ऋ १-१२-६)	हव्यराट्, नटः	नडो
जनराड् (यजु ५-२४-१)	जनराट्, भटः	भडो
स्वराड् (यजु ५-२४-१)	स्वराट्, घटः	घडो
सम्राड् (यजु ४-३०-१)	सम्राट्, घटति	घडइ

(१८) ड को ल

ईले[२६]	ईडे, दाडिम	दालिम
अहेलमान	अहेडमान, क्रीडति	कीलइ

(१९) न को ण

ण (साम-सू० ५७)	न	ण
णो (सा० २५)	नो	णो
णयामि (अ० २-१९-४)	न	णई

(२०) ध को थ, थ को ध

समिथ (यजु १७-७९-१)	समिध	—
माघव (शतब्रा-४-१-३-१०)	माधव	—
अध (सा० १४९६)	अथ	अध
नाध[२७]	नाथ यथा	जध

(२१) द को ड

दूडम (वा० सं० ३-३६)	दुर्दम, दम्भः	डम्भो
पुरोडास (यजु ३-४४)	पुरोदास, दाहः	डाहो

(२२) प[२८] को ब

त्रिष्टुब गायत्री (ऋ १०-१४-१६)	त्रिष्टुप, कुणपं	कुणवं
	क्लापः	क्लावो

(२३) ब को भ

त्रिष्टुभ (यजु १३-३४-१)	त्रिष्टुब, बिसनी	भिसिणी

(२४) भ को ह

दूलह (ऋ १-६१-१४)	दुर्लभ	दूलह
ककुह (ऋ १-१८१-५)	कुकुभ, ऋषभ	ककुह, रिसह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२५) **य को ज**

जुष्ठोहि (ऋ १-४४-२)	युष्ट, यशः	जसो
जज्ञानां (ऋ १-२३-४)	यज्ञानां	जण्णाणं
जामि (ऋ १-६५-४)	यामि	जामि
ज्योतिस् (ऋ ४-३७-१०) अ० २-२८-७)	द्योतिस्, यमः	जोइस, जमो

(२६) **व को य**

पृथुजवः (नि० पृ० ३८३)	पृथुजयः, लावण्यं	लायण्णं

(२७) **र को ल**

मधुला (ऋ १-१९१,७०)	मधुर, चरण	चलणो
	करुणः	कलुणो
लोम (अ० ४-१२-४)	रोम	लोम

(२८) **ल को र**

सरिर[२९]	सलिल, स्थूल	थोर

(२९) **ह को भ**

गृभीतां (ऋ १-१६२-२)	गृहीत	गंभीअ

(३०) **ह को घ**

सुदुघां (साम सू० २९५)	सुदुहां, संहार	संघार
सवर्दुघां (सा० सू० २९५)	सर्वदुहां, दाह	दाघ
विदेघ (शत० ब्रा० ४-१-३-१०)	विदेह	विदेघ

(३१) **संयुक्त व्यञ्जन क्ष को च्छ**

अच्छ (अथ-३-४-३)	अक्ष, वृक्ष	वच्छ
ऋच्छला	ऋक्षला, रूक्ष	रिच्छ
परिच्छ	परिच्छव, सादृक्ष्ये	सारिच्छं
	कुक्षिः	कुच्छी

(३२) **व्यञ्जन द्वित्व प्रवृत्ति**

वीर्य्येण यजु ५-२०-१)	वीर्येण, पर्यंत	पज्जंत
सूर्य्यरूप (यजु ४-३५-९)	सूर्य	सुज्ज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	पूर्व्यं (यजु ४-३५-१)	पूर्व	पुव्व
	वीर्य्यं (शत ३-२-२-५)	वीर्य	विज्ज
(३३)	**आदि व्यञ्जनलोप**		
	युवां (ऋ १-१७-७)	युवाम्, स्तुति	थुइ
(३४)	**मध्य-व्यञ्जनलोप**		
	आता (नि० ४-१४२)	आगतः, स्थविरः	थेरा
	यामि (नि० १००)	याचामि, कुतूहलम्	कोहलं
(३५)	**अन्त्य व्यञ्जन लोप**		
	उच्चा (ऋ १-१२३-२)	उच्चात्	उच्चा
	नीचा (ऋ २,१३,१२)	नीचात्	नीचा
	पश्चा (ऋ १-१२३-५)	पश्चात्	पत्वा
	तस्मा (अथर्व ८-१०-१)	तस्मात्	तम्हा
	यस्मा (ऋ १-२५-५)	यस्मात्	जम्हा
	महा (ऋ १-१६५-२)	महान्	महा-मह
	वैष्णवा (यजु ५-२५-१)	वैष्णवान्	
(३६)	**पद के अंत में रहनेवाले म् का अनुस्वार**		
	अरं (ऋ १-५-३)	अदम्	अदं
	लोकानां (अ० ४-३५-१)	लोकानाम्	लोआणं
	अग्निं (सा० ३)	अग्निम्	अग्गिं
	विष्णुं (सा० ९१)	विष्णुम्	विण्णुं
(३७)	**विपर्यय**		
	निष्टकर्य (वै० प्र० ३-१-१२३)	निसृकर्त्य	मरहट्ठ
	तर्क (नि० १०१-१३)	कर्तुः, वाराणसी	वाणारसी
(३८)	**अघोष का घोष**		
	गुल्फ (अ० १-२०-२)	कुल्फ, एक	एका
	गार्त (कत्रे प० ६१)	कार्त, अमुकः	अमुगो
	त्रिष्टुभ (ऋ १०,१४,१६)	त्रिष्टुप, आकारः	आगारो
	सम्राड् (यजु ४-३९१)	सम्राट् घटः	घडो
(३९)	**घोष का अघोष**		
	विभीदक (प्राकृत विमर्श)	विभीतक, भवति	होदि-हवदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४०) अल्पप्राण का महाप्राण

मह (ऋ १-२२-११)	मख, मुख	मुह

(४१) समीकरण

पक्क (ऋ १-६६-२)	पक्वः	पक्को

(४२) स्वरभक्ति

अंकिर (यजु १२-८-१)	अंकार, उत्तम	उत्तिम
सुवर्ग (तैसं० ४, २-३)	स्वर्गः	सुवग्गो
तनुवं (तै० सं० ७-२२-१)	तन्वम्	तणुमं

(४३) शब्द रूपों में समानता

प्राकृत में कारकों की कमी तथा उनका आपस में प्रयोग प्रायः देखा जाता है। वेदों में भी चतुर्थी विभक्ति के स्थान में षष्ठी, तृतीया के स्थान पर षष्ठी आदि कारकों का परिवर्तन प्राप्त होता है। इसी तरह नाम रूपों में प्रयुक्त कई प्रत्यय भी प्राकृत और वैदिक में समान हैं। सर्वनामों में भी कई प्रयोग समान देखे जाते हैं। इसी तरह वैदिक में प्राकृत की तरह द्विवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग पाया जाता है। तथा कुछ शब्द विभक्ति रहित भी प्रयुक्त होते हैं।

यथा—

वैदिक	**संस्कृत**	**प्राकृत**
देवो (ऋ १-१-५) प्रथमा एकवचन		
देव (ऋ १-१३-११)	देवः	देवो, देव
देवेभिः तृतीया बहुवचन	देवैः	देवेहि

प्राकृत में प्रयुक्त हरिणो, गिरिणो, राइणो, आदि शब्द रूपों की तरह वैदिक में भी सुरणो (ऋ ३-२९-१४), घर्मणो (ऋ १-१६०-१) कर्मणो (ऋ १-११-९७) आदि कई रूप प्रयुक्त होते हैं।

(४४) सर्वनाम शब्द रूप

वैदिक	**संस्कृत**	**प्राकृत**
सो (ऋ० १३,१००,४) स (ऋ १३,८२,४)	सः	सो स से
यो (ऋ १३,८१,६) जो (ऋ ७,३३,१२)	यः	जो, ज, जे
ये (ऋ ५,१९,६)		
य (ऋ ५,१९,४) य (ऋ १३,७४,२)		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते	ते	ते
अहं, ह (अथ २,२७,३)	अहम्	अहं, हं
मो (अ १,१९,१)	वयम्	मो
मे (ऋ १४,९३,१) चतु० एक०	मह्यम्	मे
णो (ऋ १,१८,३) चतु० बहु	नः	णो
अस्मे (ऋ १२,७२,२) ,,	अस्मभ्यम्	अम्हे
मे (ऋ १,२३,२०) अ (१,३०,२) सप्त०एक०		
मयि (ऋ १,२३,२२)	मयि	मे मयि

नोट—अस्मे चतु० बहु० का रूप सप्तमी बहुवचन के लिए भी प्रयुक्त होता है।[31]

तुवं प्र० एक०	त्वम्	तुवं
वो (अ ३,२,२) द्वि० बहु०	युस्मान्	वो
ते (ऋ १,८,९) तव (ऋ १,२,३) च० ए०	तुभ्यं	ते तव
तुभ्यं (ऋ १,२,३)		तुभ्यं
वो (ऋ १,२०,५) ब० ब०	युष्मभ्यम्	वो
ता (ऋ ५,२१,४)	तस्मात्	ता
(अ ४,१४,८) पंचमी एक०		

(४५) **समान शब्द**

रायो (युजु० १,१०,२)	राज	रायो
छाग (यजु० १९,८९,१)	छाग	छाग
जाया		जाया
पिप्पलं (ऋ १,१६४,२२)		पिप्पलं
ककुहो (ऋ १,१८१,५)	ककुभ	ककुहो
पूतं (पवित्र) (यजु० १२,१०४,१)		पूअ

(४६) **विशेषण**

पक्को (ऋ १,६६,२)	पक्क पक्को
मूढा (अथर्व ६,६१,२)	मूर मूढो

(४७) **तद्धित**

वैदिक भाषा में तद्धित शब्द रूपों का प्राकृत के समान ही प्रयोग देखा जा सकता है। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मद्रिमा, पुण्यमा (ऋ ३,४३,२)	पीणिमा, पुप्फिमा
सखित्व (ऋ १,१०,६)	सहितं

(४८) **अव्यय**

'उ' और 'ओ' अव्यय का वैदिक और प्राकृत भाषा में प्रचुर प्रयोग-सूचना विस्मय, पश्चाताप आदि के अर्थों में हुआ है।

'ण'–'न' के रूप में 'इव' के अर्थ मे प्रायः प्रयोग हुआ है। मा–इम निषेध अर्थ में प्रयोग हुआ है।

तावत् यावत् के लिए तत यत का प्रयोग वैदिक भाषा में हुआ है, और प्राकृत में त, य का प्रयोग हुआ है।

इसी तरह बहुत से अवयव ऐसे हैं जो प्राकृत और वैदिक भाषा में समान रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

(४९) **समान अव्यय**

इह (ऋ १, १३, १०)	इह इध
वा (ऋ १,६,९)	वा
हि (ऋ १,६,७)	हि
वि (ऋ १,७,३)	वि
नहि (अथर्व १,२१,३)	नहि
जहि (अ १,२१,२)	जहि
नमो (अ, शु १)	नमो
कुह (ऋ १,४६,९)	कुह
कदु (ऋ १,१८१,१)	कदु
याव (अ ४,१९,७)	जाव
अथा (यजु १२,८,१)	अध्र अह
उं (८,९,१)	उं
कया (किस) (साम १६८)	कया
अया (इस) (साम १,२,४)	अया
आ (अ २,१०,७)	आ
क्व (सा २७१)	क्व
आणिं (ऋ १,३६,६)	दाणिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५०) **वीप्सा**

वैदिक भाषा में वीप्सा शब्दों का प्रयोग प्राकृत की तरह ही हुआ है। यथा—

एक्कमेक्कं (ऋ १,२०,७)	एक्कमेक्कं–एक्केक्कं
रूपं रूपं (अ १,२१,३)	एक्कं एक्कं
भूयो भूयो (अ ४,२१,२)	भूयो भूयो

(५१) **क्रिया रूप**

जिस प्रकार वैदिक भाषा में धातुओं में किसी प्रकार का गण भेद नहीं है, उसी प्रकार प्राकृत भाषा में धातुओं में गण भेद नहीं है। यथा—

वैदिक	**संस्कृत**	**प्राकृत**
हनति	हन्ति	हनवि हणइ
शयते	शेते	सयते सयए
भेदति	भिनति	भेदति
मरते	म्रियते	मरते मरए

कुछ वैदिक क्रियारूपों के वर्तमानकाल प्रथम पुरुष एकवचन में 'ए' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है।

शोभे (ऋ १,१२०,५)	शोभते	सोभए सोभइ (है० ३।१५८)
दुहे (अ १,११,१२)	दुहते	दुहए
शये (वे० प्र० ७,१,१	शयते	सयए सयइ
ईसे (स० प्र० ४६८)	इष्टे	ईसे ईसए

आज्ञार्थक लोट लकार में भी वैदिक भाषा और प्राकृत भाषा में कुछ समानता देखने को मिलती है। मध्यम पुरुष एकवचन में हि एवं लोप प्रत्यय की प्रवृति है। जैसे—

गच्छहि	गच्छहि
पाहि (ऋ १,२,१)	पाहि
दह (अ १,२८,२)	दह
गच्छ (यजु ४,३४,१)	गच्छ
तिर (यजु ५,३८,१)	तिर
भज (ऋ १,२७,५)	भज
बोधि (वै० प्र०)	बोधि बोहि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैदिक और प्राकृत भाषा में आत्मनेपद और परस्मैपद का भी भेद नहीं है।

वैदिक और प्राकृत भाषा में वर्तमानकाल तथा भूतकाल की क्रियाओं के प्रयोग निश्चित नहीं हैं। वैदिक क्रियापद में वर्तमान के स्थान में परोक्ष का प्रयोग देखा जाता है। यथा—

म्रियते–(वर्त०) ममार (परोक्ष) वै० प्र० ३ ४–६ जबकि प्राकृत में परोक्ष के स्थान पर वर्तमान का प्रयोग देखा जाता है। यथा—

प्रेच्छाचक्रे (परोक्ष) पेच्छइ (वर्त०)

शृणोति (वर्त०) सोहीअ (परोक्ष) हे० प्रा० ८/४/४४७

भूतकाल के प्रयोग में क्रिया रूप के पहले 'अ' का अभाव भी देखने को मिलता है। (बेचर–१२३)

वैदिक	संस्कृत	प्राकृत
मथीत्	अमथ्नात्	मथीअ
रुजन्	अरुजन्	रुजीअ
भूत्	अभूत्	भवीअ

(५२) क्रियारूपों में एकरूपता

वैदिक	प्राकृत
मुञ्च (अथर्व ३-११-१)	मुञ्च
चर (अथर्व ३-१५-६)	चर
वञ्च (अ० ४-१६-२)	वञ्च
जय (अ० ६-९८-१)	जय
किर (यजु० ५-२६-१)	किर
कर (यजु १९-६२-१)	कर
युञ्ज (यजु ५-१४-१)	युञ्ज

(५३) वैदिक भाषा और प्राकृत के कृदंत रूपों में न्त और माण प्रत्यय की समानता है।

वैदिक	प्राकृत
चरंच (ऋ १-६-१)	चरंत
नमंत (अथर्व ३-१६-६)	नमंत
जयंत (अथ० ७-११८-१)	जयंत
राजंत (ऋ ३-२-४)	राजंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहंता (ऋ १-१७३-५)	विहंता
इच्छंत (ऋ १-१६१-१४)	इच्छंत
भरमाणः (ऋ १-७२-५)	रक्खमाण
रक्षमाणः (ऋ १-७२-५)	रक्खमाण
इच्छमानो (अथर्व ३-१५-३)	इच्छमाणो
राचमाना (ऋ ३-७-५)	रोयमाण

इसके अतिरिक्त स्त्रीलिंग बनाने के लिए ई प्रत्यय का प्रयोग भी हुआ है। जैसे - भवंती (अ० ३-१४-६), जीवंती (अ० ३-१४-६), आचरन्ती (ऋ १-१६४-४०)

(५४) हेत्वर्थ कृदन्त के प्रत्ययों में प्रायः समानता मिलती है। यथा—

वैदिक	संस्कृत	प्राकृत
कर्तवे (वै० प्र० ३-४-९)	कर्तुम्	कत्तवे
दातुं (अथर्व ६-१२२-३)	दातुम्	दाउं
ऐसे (वै० प्र० ३-४-९)	ऐतुम्	एसे

वैदिक और प्राकृत दोनों में अनियमित कृदंतों का भी प्रयोग होता है, किन्तु उनके रूपों में भिन्नता है।

(५५) **संधि रूप**

वैदिक	**प्राकृत**
सवर्ण दीर्घ संधि	
इन्द्राग्नी (ऋ १-२१)	आयारांग (आयार अंग)
ऐतेनाग्ने (ऋ १-२१-१८)	विसमायवो (विसम आयवो)
नसत्या (ऋ १-४७-९)	दसीसरो (दहि ईसरो)
अत्राह (ऋ १-४८-४)	साऊअयं (साउ उअयं)
शचीय (ऋ १-५३-३)	जेणाहं (जेण अहं)
पेनातरअ (अथर्व ४-३५-२)	बहूदग (बहु उदग)
अपवाद	
विश्वा अधि (ऋ २-८-५)	अ आणंतेण
पृथिवी इमं (ऋ २-४१-२०)	ण आणामि
मनीषा अग्निः (ऋ १-७०-१)	
पूषा अविष्टुः (ऋ १०-२६-९)	होइ इह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरी इव (ऋ १-२८-७)
अक्षी इव (ऋ २-३९-५)

(१) प्राकृत में इवर्ण या उवर्ण के आगे विजातीय स्वर रहने पर उनकी परस्पर सन्धि नहीं होती है।

न युवर्णस्यास्वे (१।६)

जैसे:—उ इन्द्रो, दणु इन्द्र, हावलि अरुणो।

(२) ए दातो स्वरे (१/७)

प्राकृत में ए और ओ के पश्चात् यदि कोई स्वर आ जाय तो परस्पर में सन्धि नहीं होती है। जैसे—नहुल्लिहणे आ

(५६ गुण सन्धि

आ मतेन्द्रेण (ऋ १-२०-५)	विलयेसो (विलया ईसो)
इ हेन्द्राणीमुय (ऋ १-२२-१२)	सासोसासा (सास उसासा)
धनेव (ऋ १-३६-१६)	गूढोअरं (गूढउअरं)
इ हेव (ऋ १-३७-३)	राए सि (राअ एसि)
अस्येद् (ऋ १-६१-११)	
येनोधतो (अथर्व ४-२४-६)	
सूक्तो (यजु ८-२५)	

अपवाद

शचीव–इन्द्र (ऋ १-५३-३)
मम इयं (ऋ १-५७-५)
अस्मा इद् (ऋ १-६१-६)
सत्य इन्द्र (ऋ १-६३-३)
मृगा इव (ऋ १-६९-७)

(५७) प्रकृति सन्धि

महया अदितये (ऋ १-२४-२)	पहावलि अरुणो
अवशा इति (अथ० १२-४-४२)	बहु अवऊढो
महां असि (साम-३-२७६)	दणु इन्द सहिर लित्तो
तन्न अतय (सा० ३-२७४)	वि अ
इन्द्रवायु इमे (ऋ १-२-४)	महुइं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धिष्ण्ये इमे (ऋ ७-७२-३)	वन्दामि अज्जवइरं
सोमो गौरी अधिश्रितः (ऋ ९-१२-३)	रुक्खादो आअओ
युस्मै इत् (ऋ ८-१८-१९)	देवीए एत्थ
अस्मै वा वहतम् (ऋ ८-५-१५)	निसा अरो
त्वे इत् (ऋ १-२९-६)	एओ एत्थ
घनसा उ ईमहे (ऋ १०-६-१०)	अहो अच्छरिअं
होता न ई यं (साम ३-७९२)	गन्ध उडि
इन्द्र इ ह्वयां (साम ३-७३६)	निसिअरो
बहुले उये (यजु ११-३०-१)	रयणी अरो
	मणु अत्तं

सन्दर्भ

१. (क) वैदिक व्याकरण — डा० रामगोपाल

२. (ख) वैदिक व्याकरण — मेक्डोनल, अनु–डा० सत्यव्रत शास्त्री, पैरा० ६

२. (क) प्राकृत भाषाओं का व्याकरण — डा० पिशेल

(ख) प्राकृत मार्गोपदेशिका — पं० बेचरदास दोशी, पृ० ११५

(ग) प्राकृत भाषा — डा० पी० बी० पंडित, पृ० १३, वाराणसी १९५४

(घ) प्राकृत भाषाएँ और भारतीय संस्कृति में उनका अवदान — डा० कत्रे, जयपुर १९७२ पृ० ६१–६२

(ङ) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास — डा० नेमिचन्द्र शास्त्री पृ० ४–९

(च) प्राकृत विमर्श — डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ, १९७४ पृष्ठ ४४–४८

३. (क) आर्यभाषा और हिन्दी — डा० सुनीतिकुमार चटर्जी (प्रथम संस्करण) पृष्ठ ५२, ६२, ७०

(ख) तुलनात्मक पालि-प्राकृत अपभ्रंश व्याकरण — डा० सुकुमार सेन, इलाहाबाद १९६९ भूमिका पृ० १–२

(ग) हिस्टोरिकल ग्रामर आफ द अपभ्रंश — प्रो० तगारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(घ) पउमचरिउ–भूमिका डा० भायाणी
(ङ) तुलनात्मक भाषाविज्ञान डा० पी० डी० गुणे, पृ० १२० आदि
(च) प्राकृत भाषा और उसका इतिहास डा० हरदेव बाहरी, दिल्ली पृ० १३
४. ज्यून्स ग्लास के फर्लाग लेक्चर्स, १९२८
५. प्राकृतिज्म इन द ऋग्वेद जी० वी० देवस्थली प्रोसीडिंग्स आफ द सेमिनार इन प्राकृत स्टडीज, १९६९ पृ० १९९–२०५
६. एलर्टिडिश्चे ग्रामेटिक बाकरनागल, १८९६–१९०५ पृ० १८ आदि
७. प्राचीन भारतीय साहित्य, भाग–१, डा० विन्तरनित्ज़, (अनु) पृ० ३५
८. वैदिक प्रक्रिया पाणिनि, २–४–६२ इत्यादि
९. विन्तरनित्ज़, वही पृ० ३४–३५
१०. (क) सिद्ध हेमशब्दानुशासन हेमचन्द्र (अनुवादक–प्यारचन्द महाराज)
(ख) प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० नेमिचन्द्र शास्त्री वाराणसी
११. डा० गुणे, वही, पृ० १०८ आदि ।
१२. कत्रे, वही, पृ० ६१–६२
१३. ऋग्वेद-गायत्री तपोभूमि, मथुरा १९६०
१४. अथर्ववेद-विश्वेश्वरानंद शोध संस्थान, १९६०
१५. यजुर्वेद–आर्य साहित्य मंडल लि०, अजमेर वि० सं० १९८८
१६. प्राकृत मार्गोपदेशिका पृ० ११७
१७. वही पृ० ११७
१८. सामवेद–आर्य साहित्य मंडल लि०, अजमेर वि० सं० १९८८
१९. कत्रे वही पृ० ६१
२०. कत्रे वही पृ० ६१–६२
२१. कत्रे वही पृ० ६१
२२. वही पृ० ६१
२३. वही पृ० ६१
२४. वही पृ० ६१
२५. वही पृ० ६२
२६. बेचरदास, वही पृ० ११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. कत्रे वही पृ० ६२
२८. हे० प्रा० प्यारचन्द्र जी महाराज, व्यावर वि० सं० २०२०
२९. कर्णसिंह–भाषाविज्ञान पृ० ११८
३०. शतपथ ब्राह्मण
३१. वैदिक व्याकरण–पृ० ३३९ दिल्ली–१९७३

जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग,
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org